CHETANA
International Journal of Education

Impact Factor
SJIF:5.689

Peer Reviewed/
Refereed Journal

ISSN-Print-2231-3613
Online-2455-8729

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

Received on 25th Mar. 2021, Revised on 28th Mar. 2021, Accepted 29th Mar. 2021

शोधपत्र

समकालीन मार्क्सवादी विमर्श में शास्त्रीय मार्क्सवाद की उपोदयता- भाग एक

*बलवान गौतम
प्रोफेसर आम्बेडकर पीठ
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला
**डॉ रेखा कौशिक
सहायक प्रोफेसर
श्याम लाल कॉलेज, *दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*
Email id - bs.20aug@gmail.com, Mob.– 9971327848

बीज शब्द – मार्क्सवादी एवं गैर-मार्क्सवादी साहित्य, भौतिकवादी समझ, वर्ग संघर्ष एवं क्रान्ति *आदि।*

सार संक्षेप

मौटे तौर पर कार्ल मार्क्स के विचारों को दो धाराओं के रूप में देखा जा सकता है। पहली धारा में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त आदि शास्त्रीय मार्क्सवाद के प्रमुख सिद्धान्त है। दूसरी धारा में मार्क्स के मानवतावादी चिन्तन को रखा जाता है। जिसका सर्वोत्तम विवरण कार्ल मार्क्स की एक आरम्भिक कृति *'Economic and Philosophic Manuscript of 1844'* में मिलता है। पराएपन की संकल्पना इसका प्रधान विषय है। यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि *1930* के दशक में जब मार्क्सवाद को हिंसक क्रांति, वर्ग संघर्ष और विरोध तथा लेनिन और स्टालिन के क्रूर और सर्वाधिकारवादी तरीकों के रूप में पहचाना जाता था, इन्हीं दिनों कार्ल मार्क्स को **'इकॉनामिक एण्ड फिलॉसाफिक मैनुस्क्रिप्सट ऑफ *1844*'** के प्रकाशन से मार्क्सवाद का मानवतावादी प्रकाश में आया और इससे अनेक परवर्ती मार्क्सवादियों को नई दिशाओं में सोचेने की प्रेरणा मिली। मार्क्स और एंगेल्स के बाद भी बहुत से दार्शनिकों, क्रान्तिकारियों एवं टीकाकारों ने मार्क्सवाद के विकास में योगदान दिया है, जिसमें वी.आई. लेनिन, आर. लक्समवर्ग, एल. ट्रोटस्की, एन. बुखारिन, जे.वी. स्टालिन और माओत्से तुंग प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त जी. लूकास, एंटोनियो ग्राम्शी, एच. मारक्यूस, एच. लेफ्यूर, जे.पी. सार्मे के योगदान से मार्क्सवाद समृद्ध हुआ है। इन सभी ने मार्क्सवाद के सिद्धान्तों एवं व्यवहार की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार व्याख्या की और इसको दर्शन बनाया। प्रस्तुत लेख में मार्क्सवाद के दार्शनिक आधारों- द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एवं पराएपन की आलोचनात्मक समीक्षा की गई है।

कार्ल मार्क्स *(1818-1883)* ने *19*वीं शताब्दी के यूरोप में उदारवादी चिंतन को चुनौती देकर नए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विचारों को आगे बढ़ाया जिससे मार्क्सवादी चिंतन परम्परा की शुरुआत हुई। कार्ल मार्क्स की दो प्रसिद्ध कृतियाँ- *'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' (1848)* एवं *'दास कैपिटल'* (जिसका प्रथम खंड *1867* में प्रकाशित हुआ और इसके द्वितीय एवं तृतीय खंड एंगेल्स के सम्पादन में क्रमशः *1885* एवं *1894* में कार्ल मार्क्स की मृत्यु के पश्चात प्रकाशित हुए) के माध्यम से उसने तत्कालीन समाजवाद में दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करके नई विचारधारा की नींव रखी। पहला, उसने काल्पनिक समाजवाद का खंडन करते हुए वैज्ञानिक समाजवाद की शुरुआत की। उसने इतिहास के दर्शन के आधार पर समाज

के विकास की व्याख्या की और उसे साम्यवादी अवस्था तक पहुँचाने के लक्ष्य पर प्रकाश डाला। दूसरे, उसने सर्वहारा समाज का सिद्धांत प्रस्तुत किया जिसमें समकालीन दरिद्रता और अन्याय से पीड़ित समाज के पुनर्निर्माण की योजना प्रस्तुत की। यहाँ कार्ल मार्क्स ने औद्योगिक क्रांति से पैदा हुए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हालातों में मजदूर वर्ग को नई चेतना देकर साम्यवादी समाज की स्थापना की योजना प्रस्तति की। वस्तुतः मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था के विकास, उसके शोषण की कार्यपद्धति एवं स्तर का व्यापक अध्ययन करके मजदूर वर्ग को पूँजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष का रास्ता दिखाया और पूँजीवाद के शोषण से मुक्त होने के लिए व्यावहारिक योजना प्रस्तुत की। प्रो. लास्की के अनुसार मार्क्स ने एक साथ ही नए पूँजीवाद के लिए समाधिलेख लिखा और उसके परिणाम की भविष्यवाणी की। वस्तुतः मार्क्सवादी पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोहमात्र ही नहीं है बल्कि इस व्यवस्था का एक सशक्त विकल्प भी प्रस्तुत करता है। राजनीतिक दर्शन के लिए मार्क्स का यह स्थायी तथा कालजयी योगदान है।

मौटे तौर पर कार्ल मार्क्स के विचारों को दो मुख्य धाराओं के रूप में देखा जा सकता है। पहली धारा में उन विचारों के समुच्चय को रेखा जाता है जिन्हें शास्त्रीय मार्क्सवाद के रूप में पहचाना जाता है। द्वन्दात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, वर्ग संघर्ष का सिद्धांत, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत, वर्ग संघर्ष के संदर्भ में वर्ग चेतना की अवधारणा, क्रांति का सिद्धांत आदि शास्त्रीय मार्क्सवाद के प्रमुख सिद्धांत हैं। दूसरी धारा में मार्क्स के मानवतावादी चिंतन को रखा जाता है। मार्क्सवाद के मानवतावादी चिंतन का सर्वोत्तम विवरण मार्क्स की एक आरम्भिक कृति 'इकॉनामिक्स एण्ड फिलॉसोफिक मैनुस्क्रिप्टस ऑफ *1844'* में मिलता है। पराएपन की संकल्पना *(Concept of Alienation)* मार्क्स की इस कृति का प्रधान विषय है। ये पांडुलिपियों लम्बे समय तक अज्ञात रहीं। *1927* तक ये पांडुलिपियाँ जर्मन सामाजिक लोकतंत्रवादियों के अभिलेखागार में पड़ी रहीं और *1932* में पहली बार जर्मन भाषा में प्रकाशित हुई। तीन वर्ष बाद इनका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ। यहाँ कार्ल मार्क्स ने पूँजीवाद की आलोचना, मुख्यतः उसके अमानवीय प्रभाव और श्रमिकों के पराएपन की दृष्टि से की है। दूसरे शब्दों में, पूँजीवादी शोषित अवस्था में मनुष्य प्रकृति से, अपने समाज से, यहाँ तक कि अपने आज से भी पराया हो जाता है। अतः उसके पराएपन को समाप्त करके अपनेपन की वापसी के लिए पूँजीवाद का अंत होना आवश्यक है। अतः इन पांडुलिपियों को तरुण मार्क्स *(Young Marx)* की कृति मानकर मार्क्स के प्रौढ़ावस्था के चिंतन से कभी-कभी अलग किया जाता है। यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि *1930* के दशक में जब मार्क्सवाद को हिंसात्मक क्रांति वर्ग-संघर्ष और विरोध तथा लेनिन और स्टालिन के क्रूर तथा सर्वाधिकारवादी तरीकों के रूप में पहचाना जाता था, इन्हीं दिनों कार्ल मार्क्स की **'इकॉनॉमिक एण्ड फिलॉसाफिक मनुस्क्रिप्टस ऑफ *1844'*** के प्रकाशन से मार्क्सवाद मानवतावादी चेहरा प्रकाश में आया और इससे अनेक परवर्ती मार्क्सवादियों को नई दिशाओं में सोचने की प्रेरणा मिली।

मार्क्स और एंगेल्स के बाद भी बहुत से दार्शनिकों, क्रांतिकारियों एवं टीकाकारों ने मार्क्सवाद के विकास में योगदान दिया है जिनमें वी.आई. लेनिन, आर. लक्समवर्ग, एल. ट्रोटस्की, एन. बुखारिन, जे.वी. स्टालिन और माओत्से तुग प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त जी. लूकास, एंटोनियो ग्राम्शी, एच. आरक्यूस, एच. लेफ्यूर, जे.पी. सार्मे के योगदान से मार्क्सवाद समृद्ध हुआ। इन सभी ने मार्क्सवाद के सिद्धांतों और व्यवहार की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप व्याख्या की और इसको दर्शन बनाया।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत मार्क्सवाद का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है। यह सिद्धांत भौतिकवाद की मान्यताओं को द्वंद्वात्मक पद्धति के साथ मिलाकर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने का प्रयत्न करता है। वस्तुतः दर्शनशास्त्र में इस प्रश्न पर विचार किया जाता है कि सृष्टि का सारतत्व क्यों है? इन प्रश्न के दो विरोधी विचार मिलते हैं: भौतिकवाद और अध्यात्मवाद। अध्यात्मवाद के अनुसार सृष्टि का सारतत्व आत्मा, चेतना एवं विचार हैं। इसलिए प्रकृति और समाज का कोई स्वतन्त्र भौतिक अस्तित्व नहीं है बल्कि सृष्टि चेतना, आत्मा अथवा विचारतत्व के रूप में अभिव्यक्त होती है। चेतना अपने-आप में एक गतिशील तत्व है और भौतिक जगत एवं सामाजिक जीवन के सारे परिवर्तन चेतन तत्व की विभिन्न अवस्थाओं की अभिव्यक्ति मात्र हैं। दूसरी और भौतिकवाद के अनुसार जड़ पदार्थ ही सृष्टि का सार है और सामाजिक जीवन की कोई भी

अवस्था जड़ पदार्थ की किसी विशेष अवस्था को अभिव्यक्त करती है। हेगेल (1770-1831) के चिंतन में अध्यात्मवाद को अपनाया गया है। दूसरी ओर कार्ल मार्क्स ने भौतिकवाद में अपना आस्था अभिव्यक्त की है।

कार्ल मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का विचार हेगेल के द्वंद्ववाद और लुडविग फेयरबाख (Ludwing Feuerbach 1804-1872) के भौतिकवाद के मिश्रण से बना है। वस्तुतः हेगेल ने आध्यात्मिक आधार पर द्वंद्वात्मक सिद्धांत दिया। उनके अपने ही तरुण अनुनायियों, जिनमें लुडविग फेयरबाख प्रमुख थे ने उसकी कड़ी आलोचना की और यांत्रिक भौतिकवाद (Mechanistic materialism) का सिद्धांत दिया जिसके द्वारा पदार्थ और गति दोनों को अलग-अलग समझा गया। कार्ल मार्क्स ने पदार्थ और गति को अभिन्न माना। अतः मार्क्स का भौतिकवाद द्वंद्वात्मक है यान्त्रिक नहीं। हेगेल और मार्क्स- दोनों ही इतिहास के अध्ययन के लिए द्वंद्वात्मक पद्धति को स्वीकार करते हैं। हेगेल के मतानुसार विकास का प्रथम तत्व वाद है। इस वाद का एक दूसरा पक्ष अर्थात इसका एक विपरित पक्ष भी है जिससे एक विरोधी तत्व पैदा होता है जिसे प्रतिवाद कहते हैं। इन दोनों के संघर्ष से एक तीसरी वस्तु पैदा होती है जिसे सम्वाद कहा जाता है। हेगेल और मार्क्स दोनों ही विकास की इस प्रक्रिया को स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि यह प्रक्रिया सदैव सक्रिय रहती है। वास्तव में विकास की प्रक्रिया को लेकर जो समानता दोनों के विचारों में दिखाई देती है वह केवल ऊपरी है। दोनों ने इस विकास पद्धति के सम्बंध में जो विचार किया हैं, वे न केवल भिन्न है बल्कि एक-दूसरे के विपरीत भी हैं। स्वयं मार्क्स ने अपनी पद्धति की तुलना हेगेल से करते हुए लिखा है कि "मेरी द्वंद्वात्मक पद्धति हेगेल की पद्धति से न केवल भिन्न है बल्कि विपरीत भी है" हेगेल के लिए विचार की प्रक्रिया जिसे वह विश्वात्मा के नाम से स्वतंत्र विषय के रूप में परिवर्तित कर देता है, वास्तविक संसार की उत्पत्ति का कारण है तथा वास्तविक संसार इस विश्वात्मा का बाह्य प्रासंगिक स्वरूप मात्र है। इसके विपरीत मेरे लिए विश्वात्मा अथवा विचार मानव मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित विचार के रूप में भौतिक संसार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अतः मार्क्स के अनुसार इस परिवर्तन क्रम में भौतिक तत्व प्रधान है और न कि कोई विचार तत्व जैसा कि हेगेल ने कहा है।

इन विभिन्नताओं के बावजूद हेगेल पहले ऐसे विचारक हैं जिन्होंने समाज को एक जीवंत संरचना माना तथा अपने आदर्शवाद एवं रहस्यवाद के बावजूद उन्होंने विश्व इतिहास को विकास की आंतरिक आवश्यकता की दृष्टि से देखने का प्रयास किया। उन्होंने नियमबद्ध समाज विकास और सामाजिक जीवन में आवश्यकता और स्वतंत्रता के अंत सम्बंधों के बारे में शानदार परिकल्पनाएँ पेश की (लॉरिमर: 2006:38)

मार्क्स और हेगेल के विचारों में समानताओं और विभिन्नताओं को और अधिक स्पष्ट करते हुए सेबाइन ने लिखा है कि मार्क्स का दर्शन दो दृष्टियों से हेगेल से मिलता है- एक तो मार्क्स ने हेगेल की द्वंद्वात्मक पद्धति को कायम रखा और आर्थिक नियतिवाद के रूप में व्याख्या की। दूसरे, विचार सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर होते हैं। हेगेल के चिंतन में यह धारणा जरा बिखरे रूप में मिलती है। मार्क्स ने इसे क्रमबद्ध किया और उसे आधुनिक चिंतन में प्रतिष्ठित स्थान दिया (सेबाइनः 1982:703)।

मैलफर्ड सिबली ने हेगेल तथा मार्क्स की इन समानताओं एवं भिन्नताओं को निम्नलिखित बिंदुओं में समेटा है:

समानताएँ:

1. तर्क तथा इतिहास की विवेचना में द्वंद्वात्मकता विचार
2. इतिहास में मानव पूर्णता की अवधारणा अथवा मान्यता।
3. ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के साधारणीकरण द्वारा कर्तव्य एवं दायित्व बोध का आभास।
4. समझदारी की गहनता के लिए चेतना के विकास पर बल।
5. व्यक्ति के मस्तिष्क को सामाजिक मस्तिष्क की एक चौकी (Outpost) मानने का विचार।

भिन्नताएँ

1. मार्क्सवाद में गत्यात्मक शक्ति वस्तु या पदार्थ है जिसे मार्क्स ने उत्पादन के साधन बतलाया जबकि हीगेलवाद स्प्रिट (Spirit) में गति (Motion) ढूँढता है।

2. मार्क्स का समूह मस्तिष्क है जबकि हेगेल में यह समग्रता राष्ट्रीय राज्य के रूप में अभिव्यक्ति पाती है।

3. हेगेल भविष्यवाणी नहीं करता जबकि मार्क्स ने भविष्य का चित्र पर्याप्त विस्तार से प्रस्तुत किया है (सिबलीः 1999-635)।

अतः मार्क्स के अनुसार “मनुष्य सामाजिक उत्पादन का जो कार्य करता है उसके दौरान वे आपस में एक निश्चित प्रकार के सम्बन्ध कायम कर लिया करते हैं। इन सम्बन्धों के बिना उनका काम नहीं चल सकता। अतः वे अपरिहार्य होते हैं और मनुष्यों की इच्छा से स्वतंत्र होते हैं। उत्पादन के ये सम्बन्ध उत्पादन के भौतिक तत्वों के विकास की विशिष्ट अवस्था (दास युग, सामंती युग, पूँजीवादी युग) के अनुरूप हुआ करते हैं। उत्पादन के इन सम्बन्धों के योग से ही समाज का आर्थिक ढाँचा बनता है और वही ढाँचा असली नींव होता है जिस पर विधिक (कानूनी) और राजनीतिक व्यवस्थाओं का निर्माण होता है और इसी ढाँचे के अनुरूप मनुष्यों की सामाजिक चेतना का निर्धारण होता है। भौतिक जीवन में उत्पादन की जो पद्धति होती है, उसी से जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का सामान्य रूप निर्धारित होता है। मनुष्यों का जीवन उसकी चेतना से निर्मित और निर्धारित नहीं होता ,बल्कि उसके सामाजिक जीवन से उनकी चेतना बनती है। समाज के विकास में एक ऐसी अवस्था आ जाती है जबकि उत्पादन के भौतिक तत्वों और विद्यमान उत्पादन के सम्बन्धों- अर्थात् सम्पत्ति विषयक सम्बन्धों के अंतर्गत वे तत्व पहले से कार्य करते आए हैं- के बीच संघर्ष उठ खड़ा होता है। दूसरे शब्दों में ये सम्बन्ध उत्पादन के तत्वों के विकास में बाधा डालने लगता है, तब सामाजिक क्रांति का युग आरम्भ होता है। इस प्रकार आर्थिक नींव के बदलने से सम्पूर्ण ऊपरी ढाँचा शीघ्र ही बदल जाता है। उपरोक्त के आधार पर मार्क्स की कुछ मान्यताओं का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है-

1. समाज के इतिहास में वास्तविक प्रेरक शक्तियाँ उसकी भौतिक अवस्थाएँ होती है।

2. भौतिकवाद धर्म को अस्वीकार करता है, क्योंकि धर्म काल्पनिक मनगंढ़त आनंद देता है।

3. द्वंद्वात्मक भौतिकवाद सामाजिक क्रांति का सबसे प्रभावशाली आधार है सामाजिक क्रांति से नवीन एवं श्रेष्ठ समाज का निर्माण होगा और

4. सामाजिक क्रांति से पूर्व हुई क्रांतियों में सत्ता एक वर्ग से दूसरे वर्ग के हाथों में गई थी लेकिन यह क्रांति उत्पादन के साधनों का समाजीकरण कर मनुष्य का मनुष्य के द्वारा शोषण समाप्त कर देगी। इस प्रकार वर्गविहीन समाज कायम होगा जो सामाजिक विकास का अंतिम चरण है। लेनिन ने मार्क्स के इन विचारों के सम्बन्धों में लिखा है कि “प्राक्-मार्क्सवादी ‘समाजशास्त्र’ और इतिहास सम्बन्धी शास्त्र ने बहुत कहा जाए तो कच्चे तथ्य ज्यों के त्यों इकट्ठा कर लिए जो ऐतिहासिक प्रक्रिया के इस या उस पहलू से जुड़े हुए थे। मार्क्सवाद ने परस्पर विरोधी रुझानों के कुल योग का अध्ययन करके उन्हें जीवन एवं उत्पादन की सटीक ठोस परिस्थितियों के रूप में समझाया। उन्होंने यह बताकर कि विभिन्न विचार एवं रुझान उत्पादन की भौतिक शक्तियों की परिस्थितियों से उदित होते हैं, यह दर्शा दिया कि सामाजिक-आर्थिक प्रणालियों के उदय, विकास और पतन की प्रक्रिया का सम्पूर्ण और सर्वमुखी अध्ययन कैसे किया जाए। जनता अपने इतिहास का निर्माण स्वयं करती है लेकिन इससे सम्बन्धित उसके विचार और इच्दाएँ कहाँ से आती हैं, उसके विशाल समूहों में विरोधी विचारों एवं रुझानों के संघर्ष क्यों उत्पन्न होते हैं, मानव समाज के विशाल तबकों में इन अंतर्विरोधों का स्रोत क्या है, मानव की ऐतिहासिक गतिविधि के आधार के रूप में भौतिक जीवन के वस्तुगत स्रोत क्या है? इन परिस्थितियों के विकास का क्या नियम है, इन सबकी ओर मार्क्स ने ध्यान दिलाया। उन्होंने दर्शाया कि इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन एक निरंतर प्रक्रिया है जो अपनी उन्नत विविधताओं के बावजूद विशेष नियमों से नियमित है (लॉरिमरः 2006ः46)

मार्क्स ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सहारा लेते हुए दो प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किए जो इस प्रकार हैं:

1. पहला लक्ष्य यह था कि वह क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग की पार्टी लिए उचित रणीनति का निर्माण करना चाहता था।

2. दूसरा प्रमुख लक्ष्य यह था कि वह इसके आधार पर इतिहास को समझाना और अन्य आर्थिक तथा सामाजिक सिद्धांतों की आलोचना करना चाहता था (सेबाइनः 1982ः708)

द्वंद्वात्मक पद्धति को अपनाने के पीछे मार्क्स का एक और लक्ष्य यह भी था कि इसके आधार पर रूढ़िगत रूप से प्रचलित तथाकथित निरपेक्ष मूल्यों का खण्डन किया जा सकता था और वास्तविक तथा आभासी के बीच हेगेल द्वारा प्रतिपादित भेद को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जा सकता था। द्वंद्वात्मक पद्धति की भौतिकवादी व्याख्या का यह अभिप्राय था कि धार्मिक रूढ़ियों और धार्मिक सत्ता के प्रतीकात्मक अर्थों से मुक्त हुआ जाए और यह स्पष्ट समझा जाए कि धर्म समाज की एक बहुत बड़ी प्रतिक्रियावादी तथा अनुदार शक्ति रहा है (सेबाइनः 1982:709)।

द्वंद्वात्मक भौतिकवादी सिद्धांत के नियम

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कुछ निश्चित नियमों से संचालित होता है, जो इस प्रकार हैः

1. परिवर्तन प्रत्येक वस्तु (सजीव या निर्जीव) की अनिवार्य विशेषता है

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की यह मान्यता है कि संसार की प्रत्येक वस्तु गतिशील होती है, अर्थात् प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन वस्तु की आन्तरिक प्रकृति के कारण होता है। पदार्थ निष्क्रिय न होकर सक्रिय है। नवीन पदार्थों की रचना और पुरातन का विनाश विकास का क्रम या नियम है।

2. विरोधी तत्वों की एकता का सिद्धांत

इस सिद्धांत की प्रमुख मान्यता है कि प्रत्येक वस्तु में अतर्निहित विरोध होता है। प्रत्येक वस्तु में दो पक्ष होते हैं- सकारात्मक और नकारात्मक। इन दोनों में निरंतर संघर्ष चलता रहता है। यही विकास का क्रम हैं। मार्क्स की मान्यता के अनुसार द्वंद्वादी दृष्टि से वस्तुएँ इसलिए गतिशील हैं, परिवर्तित होती हैं, और विकसित होती हैं क्योंकि विरोधी शक्तियों और रुझाने उनके अदर हैं। वस्तुएँ एक खास रूप में इसलिए है क्योंकि इन विपरीत शक्तियों के बीच एक अस्थायी संतुलन बना रहता है (लॉरिमरः 2006:28)।

3. निषेध का निषेध

द्वंद्वात्मक सिद्धांत की यह एक प्रमुख विशेषता है कि इसमें पहले वाली अवस्था चाहे विचार हो या पदार्थ, आने वाली अवस्था से टकरा कर समाप्त हो जाती है और एक नये विचार या वस्तु का निर्माण होता है। वास्तव में टकराव के माध्यम से दोनों विचारों में मौजूद नकारात्मक भावों का ह्रास होता है और वे परम सत्य की तरफ बढ़ते हैं। अतः यह अवस्था तब तक चलती है जब तक कि परम सत्य या उत्पादन की पद्धति को प्राप्त न कर लिया जाए जिसमें सबको अपना बराबर हक मिल सके और कोई किसी का शोषण न कर सकें।

4. परिवर्तन परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार का होता है

परिमाणात्मक मार्क्स का मानना है कि प्रकृति में होने वाला परिवर्तन परिमाणात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार का होता है। परिवर्तन क्रम में एक ऐसी अवस्था आती है जबकि परिमाणगत परिवर्तन से गुणात्मक परिवर्तन एकाएक हो जाता है। उदाहरण के लिए जब पानी गर्म हो जाता है तो उसमें गुणात्मक परिवर्तन दिखाई नहीं देता लेकिन जब वह 100 डिग्री से ग्रेड तापक्रम पर उबलने लगता है तो एकाएक वह भाप बनना शुरू हो जाता है। इसी आधार पर सामाजिक जीवन में पर्याप्त लम्बे समय तक परिवर्तन धीरे-धीरे चलता है, परंतु फिर उसमें एकाएक गुणात्मक परिवर्तन उपस्थित होता है। इसी को मार्क्स ने परिमाणात्मक परिवर्तन से गुणात्मक परिवर्तन कहा है।

5. परिवर्तन सदैव सरलता से जटिला की ओर होते हैं

द्वंद्वाद की यह मान्यता है कि विश्व में होने वाले परिवर्तन सरलता से जटिलता की ओर होता हैं। इस सम्बन्ध में मार्क्स ने डार्विन के सिद्धांत का समर्थन किया है जिसके अनुसार आज के पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों व मनुष्यों का रूप विकास-प्रक्रिया की आरम्भिक दशा से अब तक सरल से जटिल होता आया है।

6. परिवर्तन का कोई एक नियम नहीं होता

विकास हमेशा टेढ़े-मेढ़े रूप में होता है। गति निरंकुश एवं समरस नहीं होती। जीव विकसित होते हैं, उनमें परस्पर अंतर बढ़ता है, फिर वे मर जाते हैं और विखंडित हो जाते हैं। जीवों की जातियाँ विकसित होती है और अवश्यंभावी रूप से लुप्त हो जाती हैं। आज जो विभिन्न प्रजातियाँ दिखाई देती हैं वे अब तक की सभी प्रजातियों के एक प्रतिशत से भी कम हैं। कम जटिलता वाले भौतिक विश्व में भी एक जैसे विकास के उदाहरण नहीं मिलते।

ऐतिहासिक भौतिकवादः इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में जहाँ प्राकृतिक विज्ञान ने काफी प्रगति की थी, वहीं समाज का सामान्य विज्ञान अभी अपनी आरम्भिक अवस्था में ही था। मानव कदम-ब-कदम प्रकृति के नियमों से अवगत होकर उन्हें अपने नियंत्रण में ला रहा था। लेकिन समाज और उसके नियमों के बारे में जानकारी लेना कहीं अधिक कठिन कार्य साबित हुआ। इससे भी कठिन था सामाजिक नियमों और प्रक्रियाओं पर विजय पाना और उन्हें नियंत्रण में लाना। इस जटिल कार्य को कार्ल मार्क्स और एंगेल्स ने सम्पन्न किया जिन्होंने समाज सम्बन्धी वैज्ञानिक सिद्धांत विकसित किया। इनकी मान्यता थी कि प्रकृति के विकास की तरह ही सामाजिक विकास के भी कुछ निश्चित नियम हैं। लेनिन ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "मार्क्स ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का पूरा-पूरा विकास किया और प्राकृतिक संज्ञान को मानव समाज की चेतना तक प्रसारित किया। उनका ऐतिहासिक भौतिकवाद वैज्ञानिक विचार प्रक्रिया की महान उपलब्धि थी। इससे पहले इतिहास और समाज के विचारों की दुनिया में पूरी उथल-पुथल, गड़बड़ी और मनमानी फैली हुई थी। लेकिन अब उसका स्थान व्यवस्था लयबद्धता और एकीकरण ने लिया था, एक ऐसे सिद्धांत ने जिसने यह दर्शाया कि उत्पादक शक्तियों के विकास के फलस्वरूप कैसे सामाजिक जीवन की एक प्रणाली से अन्य और उच्चतर प्रणाली विकसित होती है (लेनिनः 1964:25)

मानव समाज के अन्य विषयों जैसे राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, विधि शास्त्र, सौंदर्यशास्त्र तथा नैतिकशास्त्र आदि समाज के अलग-अलग वस्तुओं का अध्ययन करता हैं, जबकि ऐतिहासिक भौतिकवाद की यह विशेषता है कि यह सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का अलग-अलग अध्ययन नहीं करता है बल्कि वह इसके सामान्य नियमों और प्रेरक शक्तियों के कार्य-स्वरूपों एवं विकास की खोज करता है। वह सामाजिक जीवन को सम्पूर्ण रूप में देखता है तथा उसके सभी पहलुओं और अंतर्विरोधों के आंतरिक सम्बन्धों पर ध्यान देता है। विशिष्ट विज्ञानों के विपरीत ऐतिहासिक भौतिकवाद सबसे बढ़कर समाज के विकास के सामान्य नियमों, सामाजिक आर्थिक संरचनाओं के उदय, आस्तित्व एवं उसकी प्रेरक शक्तियों के नियमों का अध्ययन करता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद इतिहास से इस मायने में भिन्नता रखता है कि यह न तो घटनाओं का सिलसिलेवार ऐतिहासिक अध्ययन है और न ही यह किसी जनता विशेष या देश विशेष का अध्ययन करता है बल्कि यह सिद्धांत सम्पूर्ण समाज का अध्ययन करता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद वैज्ञानिक समाजवाद का मुख्य आधार है। वह मजदूर वर्ग के संघर्ष की रणनीति एवं कार्य नीतियों, सर्वहारा क्रांति के नियमों एवं प्रेरक शक्तियों के नियमों तथा समाजवाद के निर्माण का अध्ययन करता है (लॉरिमरः 2006:43)। इसके साथ ही ऐतिहासिक भौतिकवाद हमें घटनाओं को समझने का वस्तुगत और वैज्ञानिक रास्ता दिखाता है। वह हमें उन्हें समझने में मदद करता है, उनके सम्बन्ध में वैज्ञानिक भविष्यवाणी करने में सहायता करता है। समाज विकास के रुझान एवं सम्भावनाएँ दर्शाता है। इस प्रकार वह क्रांतिकारी कार्य का सैद्धांतिक आधार भी प्रस्तुत करता है।

मार्क्स और एंगेल्स ने सामाजिक विकास के नियमा का जिक्र अपनी पुस्तक 'राजनीति अर्थशास्त्र की समीक्षा' की भूमिका में किया है जो इस प्रकार है- "अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य ऐसे निश्चित सम्बन्धों में बन्धते हैं, जो अपरिहार्य एवं उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते हैं।

उत्पादन के ये सम्बन्ध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित मंजिल के अनुरूप होते हैं। इन उत्पादन सम्बन्धों का पूर्ण समाहार ही समाज का आर्थिक ढाँचा है- यह असली बुनियाद है जिस पर कानून और राजनीति का ऊपरी ढाँचा खड़ा हो जाता है और जिसके अनुकूल ही सामाजिक चेतना के निश्चित रूप होते हैं। भौतिक जीवन की उत्पादन प्रणाली जीवन की आम सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रिया को निर्धारित करती है। मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है। अपने विकास की एक खास मंजिल पर पहुँचकर समाज की भौतिक उत्पादन शक्तियाँ तत्कालीन उत्पादन सम्बन्धों से टकराती है, जिनके अंतर्गत उस समय तक काम कर रही होती हैं। ये सम्बन्ध उत्पादन शक्तियों के विकास के अनुरूप न हरकर उनके लिए बेड़ी बन जाते हैं, तब सामाजिक क्रांति का दौर शुरू होता है। आर्थिक बुनियाद के बदलने के साथ-साथ समस्त वृहदाकार ऊपरी ढाँचा भी कमोबेश तेजी से बदल जाता है। ...कोई भी समाज व्यवस्था तब तक खत्म नहीं होती, जब तक उसके अंदर तमाम उत्पादन शक्तियाँ जिनके लिए उसमें जगह है, विकसित नहीं हो जातीं और नये, उच्चतर उत्पादन सम्बन्धों का अविर्भाव तब तक नहीं होता जब तक कि उनके अस्तित्व की भौतिक परिस्थितियाँ पुराने समाज के गर्भ में ही पुष्ट नहीं हो जाती। मोटे तौर से एशियाई प्राचीन, सामंती एवं आधुनिक पूँजीवादी उत्पादन प्रणालियाँ समाज की आर्थिक संरचना का अनुक्रमिक युग कही जा सकती है। पूँजीवादी उत्पादन प्रणालियाँ समाज की आर्थिक संरचना का अनुक्रमिक युग कही जा सकती है। पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया के अन्तिम विरोधी रूप है- व्यक्तिगत विरोध के अर्थ में नहीं, वरन् व्यक्तियों के जीवन की सामाजिक अवस्थाओं से उद्भुत विरोध के अर्थ में विरोधी हैं। साथ ही, पूँजीवादी समाज के गर्भ में विकसित होती हुई उत्पादन शक्तियाँ इस विरोध के हल की भौतिक अवस्थाएँ उत्पन्न करती है। अतः इस सामाजिक संरचना के साथ मानव समाज के विकास का प्रागैतिहासिक अध्याय समाप्त हो जाता है (मार्क्स एंगेल्सः 1978:267-8)

मार्क्स के इन ऐतिहासिक भौतिकवादी विचारों को हम काल विभाजन के माध्यम से सही तरीके से समझ सकते हैं जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन इस प्रकार है-

इतिहास का काल विभाजन या इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

आदिम (साम्यवादी) अवस्था

कार्ल मार्क्स के अनुसार मानवीय इतिहास की प्रारम्भिक अवस्था, आदिम साम्यवादी अवस्था है। इसे मार्क्स ने एशियाई उत्पादन पद्धति का नाम भी दिया है जिसमें उत्पादन की शक्तियों का विकास मुश्किल से ही हुआ था और सारी सम्पत्ति सबको साँझी सम्पत्ति थी। इस समय जनसंख्या भी काफी कम थी तथा श्रम का विभाजन भी नहीं के बराबर था तथा सभी लोगों के प्रमुख कार्य पत्थर के औजारों से शिकार करना, मछली मारना, कंदमूल, फलों का भोजन करना आदि थे। इस आदिम अवस्था में न तो किसी प्रकार के विवाह की प्रथा थी और न ही किसी का परिवार और समाज विकसित हुआ था। इस स्थिति में कोई किसी का शोषण करने की स्थिति में नहीं था। सभी समान थे।

मार्क्स का कहना था कि यह अवस्था ज्यादा दिन तक नहीं रह पाई। इसके स्थान पर एक नयी अवस्था आ गई जिसका कारण मार्क्स जनसंख्या के विकास और जरूरतों की बढ़ोतरी को मानता है, इस कारण कुछ बाहरी सम्बन्ध बने और इस विकास ने उत्पादन की नई शक्तियों को जन्म दिया जिन्होंने आदिम साम्यवादी अवस्था को समाप्त कर दिया। उसके स्थान पर एक नई अवस्था का जन्म हुआ जिसे उत्पादन का प्राचीन तरीका कहा गया (सिम्पः 2009:44)। इस समय पर कोई विकसित उत्पादन प्रणाली नहीं थी और न ही किसी प्रकार की वर्ग चेतना थी क्योंकि यहाँ वर्गों का निर्माण नहीं हुआ था।

दासता का युग

जब उत्पादन की शक्तियों में धीरे-धीरे विकास हुआ तो आदिम साम्यवादी अवस्था का पतन हो गया और एक नया युग अस्तित्व में आया जिसे दास युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में उत्पादन की नई शक्तियाँ विकसित होने लगीं और ठीक उसी के अनुरूप उत्पादन के सम्बन्ध भी बदले गये। इस युग में लोगों ने खेती करना शुरू किया, विवाह कर परिवार बसाना शुरू किया और मनुष्य ने धातुओं की पहचान कर उनके औजार और हथियार बनाने शुरू कर दिए। इस प्रक्रिया में शक्तिशाली व्यक्तियों ने अपनी शारीरिक क्षमता के आधार पर कमजोर वर्ग को अपना गुलाम

बना लिया और उससे उत्पादन करवाना शुरू किया। लेकिन श्रम का विभाजन अभी भी पूरी तरह से नहीं हुआ था या यों कह सकते हैं कि यह श्रम विभाजन अभी अविकसित अवस्था में था। गुलाम इस अवस्था में किसी भी प्रकार से उत्पादन को अधिक बढ़ाने के हक में नहीं थे क्योंकि अगर गुलाम ऐसा करते तो इसका तात्पर्य था कि उनको अतिरिक्त कार्य करना होता और मुनाफा केवल स्वामी को होता। इस युग में न केवल शक्तिशाली व्यक्तियों ने कमजोर व्यक्तियों को अपना गुलाम बनाया बल्कि जंगलों में स्वतंत्र रूप से घूमने वाले पशुओं को भी अपना गुलाम (पालतू) बनाकर उन्हें खेती के काम में लगा दिया। इस तरह से दास युग की शुरुआत हुई। उत्पादन की इन शक्तियों के परिणामस्वरूप इस युग में उत्पादन के जो सम्बन्ध बने उन्हें स्वामी और दास (गुलाम) का सम्बन्ध कहा गया।

मार्क्स की मान्यता है कि यही वह काल या अवस्था है जब इतिहास में पहली बार वर्गों की उत्पत्ति हुई। एक वर्ग का उत्पादन की शक्तियों पर नियंत्रण था और वह शोषक बना, और जिनका उत्पादन की शक्तियों पर किसी प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं था, वह शोषित बना। इसी काल से वर्ग संघर्ष की शुरुआत होती है। इस संघर्ष को रोकने के लिए पहली बार मानव समाज के इतिहास में स्वामी/षोषक की कुछ ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता हुई जो इन गुलामों को नियंत्रण में रख सकें और इसके लिए राज्यरूपी संस्था अस्तित्व में आई। मार्क्स की मान्यता है कि यह अवस्था भी स्थायी नहीं रह सकी, क्योंकि इस अवस्था में भी उत्पादन की शक्तियों का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था। अतः यह एक और नयी अवस्था में परिवर्तित हो गयी जिसे सामंतवादी अवस्था के नाम से जाना जाता है।

सामन्तवादी युग

दासों पर अपना अधिपत्य जमाने और उनका इस्तेमाल करके बड़े सतर पर खेती के लिए जंगलों को काटकर उपजाऊ जमीन तैयार करवाने के लिए हुए युद्धों ने सामंतवादी व्यवस्था का रास्ता साफ कर दिया। सामंतवादी व्यवस्था में खेती एक बड़े स्तर पर की जाने लगी थी और सामंत जमीदारों के माध्यम से किसानों और खेतीहर किसानों पर अपना नियंत्रण रखने लगे थे। इस प्रकार उत्पादन की बदली शक्तियों पर अब स्वामियों की बजाय सामंतों का अधिपत्य स्थापित हुआ और राज्य और उसकी सहयोगी सारी संस्थाएँ सामंतों के हित में कार्य करने लगीं। किसानों और खेतीहर किसानों का शोषण बढ़ने लगा। वर्ग विभाजन के लक्षण अब पहली अवस्था से ज्यादा स्पष्ट होने लगे और इस कारण वर्ग संघर्ष भी पहली अवस्था से ज्यादा उग्र और स्पष्ट रूप से सामने आया क्योंकि उत्पादन की शक्तियाँ भी ब पहली अवस्था से ज्यादा विकसित हो चुकी थीं।

सामंतवादी व्यवस्था की अपनी कुछ मूलभूत विशेषताएँ थी जिसमें एक तरफ दासता थी और दूसरी तरफ एक शृंखलावाद अवस्था थी। सबसे ऊपर वाले पायदान पर राजा था जिसके पास नाममात्र की शक्तियाँ थी और उत्पादन की शक्तियों पर किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं था। इसके दूसरे पायदान पर सामंत था जिसके हाथों में उत्पादन की शक्तियों का नियंत्रण था। अतः इस सामाजिक संरचना की सभी अन्य संस्थाओं पर भी, जिसमें सैन्य बल भी शामिल था, उसी का नियंत्रण था। इसके बाद क्रमशः जमींदार, किसान और खेतीहर किसान थे जो सामंतों के लिए उत्पादन का कार्य करते रहे। चूँकि अब उत्पादन बड़े स्तर पर होने लगा था और उसका नियंत्रण सामंतों के हाथ में था, अतः सामंतों के पास अतिरिक्त उत्पादन जमा होने लगा। इस अतिरिक्त उत्पादन को बेचने के लिए सामंत वर्ग ने एक व्यापारी वर्ग की उत्पत्ति की जो उत्पादन की कीमत सामंतों को लाकर देते थे, इस प्रकार इस कीमत के रूप में पूँजी का उदय हुआ। अतः सामंतवादी युग की शक्तियों के आधार पर उत्पादन के जो नये सम्बन्ध उभर कर आए, उन्हें सामंत और किसान के रूप में जाना गया। सामंतवादी व्यवस्था की एक अन्य विशेषता यह थी कि इस अवस्था में शासन करने के लिए धार्मिक नीतिशास्त्र का भी सहारा लिया गया जो नये इसके लिए सामंतों ने पोप का साथ लिया और जनता को गुलाम बनाये रखने तथा उत्पादन की शक्तियों पर अपने नियंत्रण को स्थाई बनाये रखने के प्रयास किए। लेकिन उत्पादन के बढ़े हुए स्तर और पूँजी के आगमन के कारण और किसी हद तक अपने शोषण के प्रति जागरूकता के कारण किसान वर्ग की बगावत ने इस युग की समाप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। एक नये युग का आगमन अवश्यंभावी हो गया क्योंकि उत्पादन की शक्तियों अपने विकास क्रम की अगली एवं उन्नतर अवस्था की तरफ विकसित हो चुकी थीं। अतः अब उत्पादन के पुराने सम्बन्ध चाहकर भी उनको रोक नहीं पाए। एक राजनीतिक/पूँजीवादी क्रांति हुई। जिसमें सामंतवाद समाप्त हो गया और पूँजीवाद का आगमन हुआ। उत्पादन की शक्तियों का अपने लक्ष्य पहुँचने तक का यह एक और कदम था।

पूँजीवादी युग

सामंतवादी युग की समाप्ति के पीछे उत्पादन की उन शक्तियों का हाथ था जिन्होंने भाप के इंजनों पर आधारित कल-कारखानों तथा बाजार आधारित वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ावा दिया। इस पूँजीवादी उत्पादन की पद्धति ;डवकमद्ध में पूँजीपतियों का निजी सम्पत्ति अथवा बाजार पर पूर्ण नियंत्रण रहता है। उत्पादन बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा बड़े स्तर पर ऐसी अलग-अलग वस्तुओं का किया जाता है जिनको बाजार में बेचकर अधिक से अधिक मुनाफा कमाया जा सके। उत्पादन की शक्तियों में परिवर्तन के कारण उत्पादन के जो नये सम्बन्ध स्थापित होते हैं, उन्हें पूँजीपति और मजदूर अथवा बुर्जुआ और सर्वहारा कहा गया। इस पूँजीवादी व्यवस्था की एक विशेषता यह भी है कि इस अवस्था में प्रत्येक चीज एक ऐसी वस्तु में बदल जाती है (पण्य) जिसकी एक कीमत होती है और यह कीमत बाजार में तय होती है। बाजार इस कीमत को मांग और पूर्ति के नियम पर निर्धारित करता है। अतः मजदूर भी इस अवस्था में एक वस्तु में परिवर्तित हो जाता है जिसकी कीमत बाजार में तय होती है। वही मजदूर अपनी श्रम शक्ति का संचय भी नहीं कर सकता। इस कारण पूँजीपति मजदूरों का शोषण करते हैं और उनको श्रम शक्ति के अनुकूल पैसा न देकर उसे कम पैसा देकर अधिक उत्पादन कराते हैं जिसके कारण पूँजीपतियों के पास अतिरिक्त पूँजी पैदा होती हे और इसे पुनः निवेश कर देते हैं। इस प्रकार एक तरफ पूँजीपतियों की शक्ति बढ़ती चली जाती है और दूसरी तरफ मजदूरों का शोषण।

इसके साथ ही पूँजीवादी व्यवस्था की एक अन्य विशेषता यह है कि यह एक प्रतियोगी समाज होता है। इस प्रकार की प्रतियोगिता इस समाज से पूर्व किसी भी समाज (दायसुग या सामंत युग) में नहीं पाई जाती। इस प्रतियोगिता के कारण बड़े पूँजीपति बड़े-बड़े कल-कारखानों में अधिक से अधिक उत्पादन करने लगते हैं जिससे वस्तु की लागत भी कम हो जाती है और वह बाजार में सस्ती बिकती है। इसके विपरीत छोटे पूँजीपति जो मध्यम या छोटे पैमाने पर उत्पादन करते हैं, वस्तुओं की कीमत उतनी कम नहीं कर पाते। फलस्वरूप वे बाजार व्यवस्था में अधिक दिन नहीं टिक भी पाते और सर्वहारा वर्ग में शामिल हो जाते हैं। मार्क्स कहता है कि उत्पादन की शक्तियों में हुआ यह विकास एक तरफ पूँजीपतियों के लिए अधिक से अधिक लाभी की व्यवस्था करता है और दूसरी तरफ सर्वहारा वग्र के शोषण को भी बढ़ावा देता है। मार्क्स की मान्यता है कि चूँकि उत्पादन की शक्तियों ने अपने विकास क्रम में एक उच्चतर स्तर को प्राप्त कर लिया है, अतः उत्पादन के सम्बन्ध भी एक नई विकसित अवस्था में पहुँच गए हैं। इस पूँजीवादी युग में यह वर्ग विभाजन एकदम साफ हो गया है अर्थात् दोनों वर्गों के बीच में संतुलन स्थापित करने वाला मध्यम वर्ग प्रतियोगिता के कारण समाप्त हो गया है। ऐसे में सर्वहारा वर्ग, जिसके पास अब कुछ नहीं बचा, क्रान्ति को जन्म देगा। इस वर्ग संघर्ष में पूँजीपति समाप्त हो जाएँगे और उत्पादन की शक्तियों पर सर्वहारा वर्ग का अधिपत्य स्थापित हो जाएगा। इस क्रांति को मार्क्स समाजवादी क्रांति के नाम से पुकाराता है। यह वह क्रांति है जो आगे चलकर साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना कामार्ग प्रशस्त करेगी। मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी राज्य वर्ग-संघर्ष की चरम अवस्था है क्योंकि इस शोषणकारी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था में मजदूर वर्ग का एक स्थान विशेष (मुख्यतः मजदूरों की बस्तियों) में एकीकरण होगा और इस एकीकरण के परिणामस्वरूप ही सर्वहारा वर्ग में एक वर्ग चेतना का उदय होगा। मार्क्स की यह अटूट मान्यता है कि इस वर्ग चेतना के अभाव में सफल क्रांति नहीं हो सकती। इसी आधार पर उन्होंने माना है कि इस पूँजीवादी युग से पूर्व में होने वाली क्रांतियाँ सफल क्रांतियाँ नहीं थी, और वे विकसित अवस्था की ओर एक कदम मात्र साबित हुई लेकिन यह क्रांति (समजावादी) एक सफल क्रांति होगी। क्योंकि इसके बाद एक सामाजिक अवस्था का निर्माण किया जा सकेगा।

समाजवादी समाज (संक्रमणकालीन युग)

मार्क्स और एंगेल्स की मान्यता है कि पूँजीवाद उत्पादन की पद्धति के विकसित होने के क्रम में एक काल मात्र है। मार्क्स मानता है कि इस क्रम में प्रत्येक काल में विरोधी वर्गों का संघर्ष ही उत्पादन के सम्बन्धों का निर्धारण करता है। मार्क्स इस बात में बिल्कुल विश्वास नहीं करता था कि पूँजीवाद इतिहास की अंतिम विराम अवस्था है। मार्क्स मानता है कि यह चक्कर तब तक चलता रहेगा जब तक कि पूँजीवाद को उखाड़कर फेंक नहीं दिया जाता और साम्यवाद की स्थापना नहीं हो जाती (स्मिपः 2009:48)। इसी क्रम में साम्यवाद की स्थापना से पूर्व एक और काल आता है जिसे मार्क्स ने समाजवादी समाज का नाम दिया है। यह समाजवादी समाज एक संक्रमणकालीन समाज है जिसमें समाजवादी क्रांति के पश्चात पूँजीवाद के बचे हुए अवशेषों को समाप्त करने के लिए सर्वहारा वर्ग की तानाशाही स्थापित की जाती है। इस अवस्था में उत्पादन की शक्तियाँ अपने परम (Absolute) के नजदीक पहुँच जाती हैं। इस समाज में उत्पादन का आधार यह होता है कि सभी व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करेंगे तथा अपने कार्य के आधार पर प्राप्त करेंगे। धीरे-धीरे यह तानाशाही पूँजीवादी के अवशेषों का समाप्त कर देगी और निजी सम्पत्ति के स्वामित्व की परम्परा को भी समाप्त कर देगी और इस पर आधारित वर्ग भी समाप्त हो जाएँगे और वर्ग-व्यवस्था भी।

समाजवादी व्यवस्था में राज्य का अस्तित्व बना रहेगा, क्योंकि पूँजीपतियों के अवशेषों को समाप्त करने के लिए सर्वहारा वर्ग को राज्य रूपी शक्ति की आवश्यकता होगी। लेकिन, इस अवस्था में राज्य की भूमिका पूर्णतः परिवर्तित हो जाएगी। जहाँ राज्य इससे पहले वाली अवस्थाओं में शक्तिशाली स्वामी, सामंत अथवा पूँजीपति के हाथों में कमजोर लोगों के शोषण का यंत्र था, इस अवस्था में सर्वहारा के हाथों में पूँजीपतियों के अवशेषों को समाप्त करने का यंत्र बनेगा। दूसरे शब्दों में, राज्य की आवश्यकता तब तक बनी रहेगी जब तक कि समाज में स्थापित वर्ग चरित्र को समाप्त नहीं किया जाता। मार्क्स की मान्यता है कि राज्य की उत्पति मुख्यतः वर्ग-विशेष के हितों की सुरक्षा के लिए की गई थी। अतः समाजवादी समाज के अगले चरण साम्यवादी समाज में वर्गों का भेद समाप्त हो जाएगा। तब राज्य की कोई आवश्यकता नहीं होगी और राज्य धीरे-धीरे अपने आप लुप्त हो जाएगा। एक वर्गविहीन राज्यविहीन साम्यवादी व्यवस्था समाज से सभी प्रकार के अलगावों की समाप्ति करेगी तथा एक परम सत्य की स्थापना करेगी (सिम्पः 2009:48)। यह परम सत्य स्वतंत्रता है।

साम्यवादी समाज (वर्ग-विहीन राज्य-विहीन समाज)

मार्क्स के अनुसार यह एक ऐसी अवस्था होगी जिसमें उत्पादन की शक्तियों का पूर्णता विकास हो चुका होगा और उस पर आधारित सामाजिक सम्बन्धों में भी पूर्णतयाः आ चुकी होगी। इस समाज में कोई किसी का शोषण नहीं करेगा क्योंकि इस समाज में न कोई वर्ग होगा और न ही उनके संरक्षण देने या शोषण करने वाली संस्था होगी। इस अवस्था में निजी सम्पत्ति का कोई अस्तित्व नहीं होगा। समाज की उत्पादन व्यवस्था पर सबका सांझा स्वामित्व होगा और प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करेगा और आवश्यकता के अनुसार प्राप्त करेगा (From each according to his ability to each according to his need)। सबको सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त होगी। इस साम्यवादी अवस्था में कोई किसी को कार्य करने के लिए मजबूर नहीं कर पाएगा। कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार का अतिरिक्त उत्पादन नहीं करेगा। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी कार्य को करने के लिए स्वतंत्र होगा- श्रम का विभाजन एवं निजी सम्पत्ति को समाप्त कर दिया जाएगा और व्यक्ति का श्रम उसके अस्तित्व का एकमात्र साधन नहीं रहेगा। श्रम का प्रयोग स्वतंत्र रूप से सबकी सांझा जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जाएगा (वोल्फः 2003:27-28)। मार्क्स के अनुसार इस अवस्था में व्यक्ति जैसे जीना चाहता है, वैसे ही जी सकेगा और सभी प्रकार के अलगाव से दूर रह पाएगा और अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद की समीक्षा

कार्ल मार्क्स एवं एंगेल्स ने सामाजिक विकास के अध्ययन के लिए द्वंद्वात्मक पद्धति को अपनाया और इसी आधार पर इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की जिसे ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः जहाँ द्वंद्वात्मक भौतिकवाद मार्क्सवाद का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है वहीं ऐतिहासिक भौतिकवाद उसका अनुभवमूलक आधार (Empirical Basis) प्रस्तुत करता है। बाद के मार्क्सवादियों एवं समाजशास्त्रियों ने मार्क्स एवं एंगेल्स द्वारा प्रतिपादित द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद में अपने संशोधन एवं आपत्तियाँ दर्ज कराई हैं। इस शृंखला में सबसे पहला यागदान माओ-त्से-तुंग को जाता है। मार्क्सवाद लेनिनवाद के मौलिक सिद्धांतों को स्वीकार करते हुए माओ-त्से तुंग ने उनमें कुछ गूढ परिवर्तन लाने के भी प्रयास किए हैं। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के नियम के अनुसार सामाजिक परिवर्तन किसी विशेष परिवेश के भीतर रहने वाली विरोधी शक्तियों की भूमिका के कारण होता है। कार्ल मार्क्स एवं एंगेल्स ने इसे वाद (Thesis), प्रतिवाद (Anti Thesis) एवं संवाद (Synthesis) कहा है। माओ ने इसी विचार को अपने अंतर्विरोध के सिद्धांत में प्रस्तुत किया है। 1937 में प्रकाशित अपने लेख में माओ ने लिखा है कि इस संसार की सम्पूर्ण वास्तविकता अंतर्विरोधों से परिपूर्ण है। उदाहरण के लिए जीवन व मृत्यु, जमा व घटा, क्रिया व प्रतिक्रिया, सकारात्मक व नकारात्मक, संयोग व वियोग, वर्ग संघर्ष, प्रहार व बचाव तथा युद्ध व शांति। माओ का कहना है कि द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के विरोधी ध्रुवों की एकता का नियम सबसे अधिक आधरभूत वस्तु है। यह नियम माँग करता है कि चाहे किसी विवाद के समाधान की बात है अथवा किसी प्रश्न का उत्तर देना है, हर वस्तु को उसकी सम्पूर्णता तथा अंशों दोनों में देखना चाहिए। माओ की मान्यता है कि सामाजिक विकास मुख्य रूप से मनुष्य के सामाजिक जीवन में अंतर्निहित विरोधों के कारण होता है। जैसे उत्पादन की शक्तियों तथा उत्पादन के सम्बन्धों के बीच विरोध, वर्गों के बीच टकराव, पुरानी व नई व्यवस्था के बीच टकराव आदि। माओ के अनुसार किसी वस्तु के विकास कामूल

कारण बाह्य नहीं बल्कि आन्तरिक होता है। जिसमें विरोध दो मूल रूपों को ग्रहण करते हैं: अपेक्षाकृत विश्राम तथा स्पष्ट परिवर्तन (माओः 1937:9)।

जैसा कि इसके पूर्व बताया गया है कि अंतर्विरोधों का नियम द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के नियम के अनुसार समाज में निरंतर विकास का नियम है। विकास की द्वंद्वात्मक प्रक्रिया का सूत्र किसी विशेष ध्येय के लिए अपनाया जाता है। जब वह प्रयोजन पूरा होता है तो उसे छोड़ दिया जाता है। यहाँ माओ की स्थिति मार्क्स, एंगेल्स एवं लेनिन से भिन्न है। माओ ने स्पष्ट रूप से अंतर्विरोधों की सम्भावना को उस अवस्था में भी स्वीकार किया है जब वर्गहीन समाज राज्य विहीन अवस्था में बदल दिया जाएगा। माओ के अनुसार साम्यवादी राज्य की स्थापना के साथ संघर्ष समाप्त नहीं हो जाता, वह केवल नया रूप ले लेता है। साम्यवाद की स्थापना के बाद भी देश में कई प्रकार के अंतर्विरोध चलते रहते हैं- प्रगति और रूढ़िवादिता के बीच, अग्रिम दस्तों और पीछे की श्रेणियों के बीच, सकारात्मक एवं नकारात्मक के बीच एवं उत्पादक शक्तियाँ और उत्पादन की स्थितियों के बीच। 1956 में माओ ने लिखा कि मानवता अभी अपनी तरुण अवस्था में है। कोई नहीं जानता कि वह मार्ग जिसे अभी उसे पार करना है, उस मार्ग की तुलना में अधिक लम्बा है... जिस पर से वह गुजर चुका है एक अंतर्विरोध दूसरे अंतर्विरोध को जन्म देगा और जब पुराने अंतर्विरोध सुलझा लिए जाएँगे तो उने स्थान पर नए अंतर्विरोध उठ खड़े होंगे (स्टुअर्ट आर.स्क्रेमः 1969:303-4)। इस प्रकार माओ ने मार्क्सवादी परम्परा में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अध्याय में 'अंतर्विरोध' का एक नया आयाम जोड़ा है।

परम्परागत मार्क्सवाद के प्रवर्तकों में कार्ल मार्क्स और एंगेल्स के बाद कार्ल कॉटस्की (1854-1938) का नाम आता है। कॉटस्की का मार्क्सवाद विकासवादी (Evolutionary) और नियतिवादी (Determinist) था। वह पहले डार्विन था और बाद में मार्क्सवादी। उनके विचार से मार्क्स का भौतिकवादी इतिहास सिद्धांत (Materialist Theory of History) डार्विनवाद का ही विस्तार था। उनकी मान्यता थी कि जीव वैज्ञानिक विकास की भाँति मानवीय चेतना और मानवीय नैतिकता विकास के जरूरी नियमों से बँधी हुई है। अतः वैज्ञानिक पद्धति का सहारा लेकर मानव इतिहास के भावी विकास क्रम का पता लगाया जा सकता है। आधुनिक मार्क्सवादी विचारक जाज्र ल्यूकाच (1885-1971) ने परम्परागत मार्क्सवाद सिद्धांतों की नई व्याख्या करके नव मार्क्सवादी (Neo Marxist) चिंतन को बढ़ावा दिया। ल्यूकाच ने अपने क्रांतिकारी चिंतन में ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism) की जगह चेतना सिद्धांत (Theory of Consciousness) को मुख्य सिद्धांत के रूप में स्थापित किया। अपनी पुस्तक 'History and class consciousness 1923' में उन्होंने तर्क दिया कि मार्क्स का इतिहास सही है किन्तु अधूरा है। उनकी मान्यता थी कि कार्ल मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद में यह बात भी जोड़ी जानी चाहिए कि ऐतिहासिक विकास विभिन्न बिंदुओं पर विभिन्न वर्ग संसार का किस-किस रूप में देखते हैं। वास्तव में प्रत्येक वर्ग की चेतना की संरचना अलग-अलग होती है और उत्पादन सम्बन्धों में परिवर्तन होने से जो नए वर्ग अस्तित्व में आते हैं, उनकी चेतना नए रूप से प्रकट होती है। उनके अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था में सभी वर्ग अपनी तरह की मिथ्या चेतना (False Consciousness) से ग्रस्त है। अतः वास्तविक समस्या इस मिथ्या चेतना से मुक्त होकर संसार को समझने की है।

इसी शृंखला में बीसवीं शताब्दी के जर्मन दार्शनिक एवं सामाजिक सिद्धांतकार मैक्स हारवाइमर (1898-1973) ने ऐतिहासिक भौतिकवाद की सभी नियतिवादी (Determinist) एवं प्रत्यक्षवादी (Positivist) व्याख्याओं पर विशेष रूप से प्रहार किया है। मैक्स हारर्वाइमर (Horkheimer, Max) ने तर्क दिया कि यह विचार भ्रमपूर्ण है कि अवश्यंभावी सर्वहारा क्रांति का विचार अलगाव और शोषण का अंत कर देगा। उनकी मान्यता है कि मार्क्स ने इतिहास की भौतिक शक्तियों को अत्यधिक प्रमुखता दी है और चेतन मनुष्य के चिन्तन की अधिकाधिक उपेक्षा की है। इतना ही नहीं, मुक्ति के बारे में मार्क्स का चिंतन अत्यंत संकीर्ण है जो सिर्फ आर्थिक मुक्ति तक सीमित है।

इतना ही नहीं, स्वयं एंगेल्स ने भी इस बात को महसूस किया है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद किस प्रकार आर्थिक उत्पादन पद्धति को सामाजिक परिवर्तन का एकमात्र कारण घोषित करता है? इस सम्बन्ध में उन्होंने ब्लोच (Bloch) को एक पत्र में लिखा था कि "हमारे अनुयायियों द्वारा जो आर्थिक पक्ष पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाता है, उसके लिए मार्क्स और मैं कुछ अंशों में उत्तरदायी हैं। अपने विरोधियों के आक्रमणों का उत्तर देने के लिए हमारे लिए यह आवश्यक हो गया था कि हम उनके द्वारा अस्वीकार किए जाने वाले इस केंद्रीय सिद्धांत पर अधिक बल दें। अतः हम ऐतिहासिक विकास पर अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया से प्रभाव डालने वाले अन्य तत्वों के साथ न्याय करने का समय, स्थान और अवसर नहीं मिला। इसी पत्र में एंगेल्स ने आगे लिखा है कि इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के अनुसार अन्तिम रूप से निर्णायक तत्व वास्तविक जीवन का

उत्पादन एवं पुनरूत्पादन है। इससे अधिक न तो मार्क्स ने और न मैंने कभी कुछ कहा है। लेकिन जब कोई इसे विकृत करके यह कहने लगता है कि आर्थिक तत्व ही एकमात्र तत्व है तो वह इस कथन को निरर्थक काल्पनिक और मूर्खतापूर्ण बना देता है। आर्थिक परिस्थिति आधार है लेकिन समाज के ऊपरी ढाँचे के विभिन्न तत्व वर्ग संघर्ष का राजनीतिक स्वरूप और उससे उत्पन्न होने वाले संविधन कानूनी व्यवस्था और वास्तविक अर्थों में भाग लेने वालों के मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले उनके प्रतिबिम्ब तथा उनके राजनीतिक, कानूनी, दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण- ये सब तत्व ऐतिहासिक संघर्ष विकास पर अपना प्रभाव डालते हैं, और कई बार उसके स्वरूप का निर्धारित करते हैं। (Quoted by Lancaster in Masters of Political Thought, Vol. 3, 171)।

अलगाव की अवधारणा

अपनी द्वंद्वात्मक की अवधारणा की भाँति कार्ल मार्क्स ने 'अलगाव के सिद्धांत' को भी हेगेल और लुडविग फेयरबाख से लिया है। हेगेल के अनुसार मनुष्य कालक्ष्य आत्मानुभूति अथवा स्वाधीनता प्राप्त करना है। उसके सभी मानवीय क्रियाकलाप इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर किए जाते हैं, किंतु इस लक्ष्य की प्राप्ति में आवश्यकता एवं अलगाव रूपी दो तत्व बाधा डालते हैं। जहाँ 'आवश्यकता' से तात्पर्य प्राकृतिक और भौतिक बाधाओं से है, वहाँ 'अलगाव' कर्म से कर्ता को अलग करता है। मनुष्य स्वयं का स्वामी बनना चाहता है किंतु इसके स्थान पर वह दूसरों के हाथों में कठपुतली बनकर रह जाता है। अतः अपने स्वयं को अनुभव न कर पाना ही मानवीय अलगाव का मुख्य कारण है। लुडविग फेयरबाख ने हेगेल के बाद अलगाव का सिद्धांत विकसित किया। उसने अपनी महत्वपूर्ण कृति **'द एसेसं ऑफ क्रिश्चएनिटी' (1841)** में यह विचार प्रस्तुत किया कि धर्म मनुष्य के मन की कोरी कल्पना है। वह मानवीय कामनाओं का प्रतिबिम्ब है। सम्पूर्ण आध्यात्मिक विकास का ईश्वर से कोई लेना-देना नहीं है बल्कि उसका सम्बन्ध मनुष्य से है। अतः सार मानवीय प्रयासों का ध्येय मानव कल्याण होना चाहिए। लुडविग फेयरबाख की मान्यता है कि धार्मिक अंधविश्वास ही मनुष्य के अलगाव का स्रोत है। उसने आत्मप्रेम के धर्म द्वारा देवत्व की मनुष्य में पुनर्स्थापना करके इस समस्या के समाधान का सरल सुझाव दिया। वस्तुतः फेयरबाख ने हेगेल के दर्शन की जो मीमांसा प्रस्तुत की, उसने तरुण मार्क्स और एंगेल्स को विशेष रूप से प्रभावित किया। जब से मार्क्स की कृतियाँ विशेषकर **'इकॉनॉमिक एंड फिलॉसोफिक मैनुस्क्रिप्ट्स ऑफ' (1844)** प्रकाश में आई, तभी से तरुण मार्क्स के मन पर फेयरबाख के दर्शन से प्रभावित होकर ही कार्ल मार्क्स ने साम्यवाद की संकल्पना को इस रूप में प्रस्तुत किया कि पूँजीवाद के अंतर्गत सर्वहारा के मन में अपनी रचना और पर्यावरण से अलगाव पैदा हो जाता है। जबकि साम्यवादी समाज के अन्तर्गत मनुष्य अपनी प्रकृति का स्वतंत्र विकास कर सकते हैं। वस्तुतः कार्ल मार्क्स ने अलगाव के विषय को हमेशा एक भिन्न अर्थ प्रदान किया। उनके अनुसार अलगाव न तो मनुष्य की आत्मा को अनुभव करने में असफलता का परिणाम है और न ही धार्मिक अंधविश्वासों का, बल्कि इसको मनुष्य के मर्म और मानवीय गतिविधि में खोजा सकता है।

यंग मार्क्स की प्रमुख कृति **'इकॉनॉमिक एंड फिलॉसोफिक मैनुस्क्रिप्टस ऑफ 1844'** का प्रमुख विषय अलगाव (Alienatoin) है। इन पांडुलिपियाँ में कार्ल मार्क्स ने अपनी परवर्ती रचनाओं की तरह पूँजीवादी समाज की कड़ी आलोचना की है और उसके स्थान पर साम्यवादी समाज की स्थापना की वकालत की है। कार्ल मार्क्स की परवर्ती रचनाओं में पूँजीवादी प्रणाली का विश्लेषण उत्पादन सम्बन्धों, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत, वर्ग संघर्ष अथवा सर्वहारा वर्ग की तानाशाही के दृष्टिकोण से किया है। इन पाण्डुलिपियों की विशिष्टता इस बात में है कि यहाँ कार्ल मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था की आलोचना मुख्य रूप से उसके अमानवीय स्वरूप और मजदूरों के पराएपन के दृष्टिकोण से किया है। यहाँ कार्ल मार्क्स का मुख्यतर्क यह है कि शोषण पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत मनुष्य का अपनापन नष्ट हो जाता है। वह प्रकृति से, अपनी रचना से और यहाँ तक कि अपने आप से भी पराया हो जाता है अतः उसके अपनेपन की वापसी के लिए पूँजीवाद का अंत करना आवश्यक है।

वस्तुतः बीसवीं शताब्दी के पहले एक दूसरे दशक में हंगरी के मार्क्सवादी विचारक जार्ज ल्यूकाच (Gyorgy Lukacs, 1885-1957) ने अपनी प्रेरणा एवं सूझबूझ से अलगाव का मार्क्सवादी सिद्धांत विकसित किया और पूँजीवादी समाज में अलगाव एवं पराधीनता (Alienation and Objectification) पर एक लेखमाला प्रस्तुत की। जिस समय यह लेखमाला प्रकाशित हुई, उस समय तक कार्ल मार्क्स द्वारा रचित **'इकॉनॉमिक एंड फिलॉसोफिक मैनुस्क्रिप्ट्स ऑफ' (1844)** प्रकाश में नहीं आई थी। बाद में जब 1932 में यह जर्मन भाषा में पहली बार प्रकाशित हुई और

1935 में इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ तो इसकी व्यापक चर्चा शुरू हुई। इससे ल्यूकाच की रचनाओं का महत्व बढ़ गया और अलगाव की संकल्पना समकालीन मार्क्सवादी चिन्तन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई।

कार्ल मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूरों के अलगाव को चार स्तरों पर पहचाना है जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य का अमानवीयकरण करने की लज्जास्पद प्रक्रिया आरम्भ होती है। सर्वप्रथम, पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमविभजन के फलस्वरूप मनुष्य का अपने कार्य की प्रक्रिया से नियंत्रण हट जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमिक से यह नहीं पूछा जाता कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए और कैसे किया जाए। उसका काम उसे रचनात्मक कार्य का संतोष नहीं दे पाता। वास्तव में वस्तु निर्माण की प्रक्रिया ही कारीगर और उसके उत्पादन के सम्बन्धों में बदलाव के लिए उत्तरदायी हैं। इस प्रकार मजदूर दूसरों के उद्देश्य की प्राप्ति का साधन बन जाता है। उत्पाद, उत्पादक पर और मशीन, मशीन के स्वामी पर शासन करने लगता है। श्रमिक जो भी उत्पादन करता है, उसका क्रय नहीं कर सकता और जो उत्पादन पर अधिकार कर सकते हैं वे कार्य नहीं करते, वे निठल्ले होते हैं। दूसरा, पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमिक मशीन का पुर्जा बनकर रह जाता है। उसे बँधा-बँधाया काम करना पड़ता है। शमीनों पर काम करते-करते प्रकृति से उसका सम्बन्ध टूट जाता है। इस प्रकार वह प्रकृति से पराया हो जाता है। तीसरा, पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में इतनी अधिक प्रतिस्पर्धा है कि श्रमिक अपने सहचरों से भी हार्दिक सम्बन्ध नहीं रख पाता। इस प्रतिस्पर्धा में परस्पर हितों का संघर्ष पैदा होता है। इस प्रकार श्रमिक का अपने समाज से भी अलगाव हो जाता है और अंततः श्रमिक अपने आप से भी पराया हो जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था मानवीय प्रतिभा और गुणों को उन हालातों का दास बना देती है, जो पूँजी और सम्पत्ति के निजी स्वामित्व से पैदा होते हैं। इतना ही नहीं, पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति भी इस सम्पत्ति की तानाशाही का गुलाम बन जाता है। अधिकाधिक लाभ की पिपासा उसका अमन चैन छीन लेती है और वह सारे मानवीय गुणों से शून्य होता चला जाता है। इतनी सम्पन्नता के बीच भी वह सच्ची स्वतंत्रता को वहन नहीं कर पाता।

कार्ल मार्क्स आगे लिखते हैं कि अलगाव पूँजीवादी व्यवस्था का सड़ा हुआ उत्पाद है। पूँजीवादी समाज में मनुष्य दास बन जाता है- अपनी सम्पत्ति का धनी और अपनी आवश्यकताओं से निर्धन। इस प्रकार श्रमिक पूँजीवादी बाजार की एक वस्तु बनकर रह जाता है। स्वतंत्रता, समानता और अधिकारों की खोखली घोषणाओं के आवरण में पूँजीवादी व्यवस्था मनुष्य द्वारा मनुष्य के प्रत्यक्ष, नग्न, लज्जास्पद और क्रूर शोषण के लिए जिम्मेदार है। अतः कम्युनिस्ट घोषणापत्र में कार्ल मार्क्स कहता है कि पूँजीपति वर्ग ने प्रत्येक उस व्यवसाय को उसके आभामण्डल से वंचित कर दिया है जिसके प्रति अब तक लोगों के मन में आदर और श्रद्धा की भावना थी। वैद्य, वकील, पुरोहित, कवि और वैज्ञानिक सभी को उसने अपना वेतनभोगी कर्मचारी बना दिया है। इसने पारिवारिक सम्बन्धों के भावात्मक पक्ष को छिन्न-भिन्न कर मात्र पैसे के सम्बन्धों में बदल दिया है। मजदूर अपने को थोड़ा-थोड़ा करके बेचने पर बाध्य हैं। आज वह व्यापार की दूसरी वस्तुओं की तरह एक वस्तु बनकर रह गया है। इसी प्रकार मशीन के व्यापक प्रयोग के कारण मजदूर मशीन का पुछल्ला मात्र बन कर रह जाता है। मजदूर केवल पूँजीपति वर्ग और पूँजीवादी राज्य के ही गुलाम नहीं है बल्कि उनको प्रत्येक दिन, प्रत्येक क्षण मशीन द्वारा कारखाने के स्वामी द्वारा गुलाम बनाया जाता है।

इस प्रकार पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूर का पूर्ण अलगाव हो जाता है। मनुष्य का अपने सहचरों से इसलिए अलगाव हो जाता है क्योंकि उनके सम्बन्धों का आधार धन होता है। इसी प्रकार उसका प्रकृति से अलगाव कर दिया जाता है क्योंकि उसके पास न ही प्रकृति के सौंदर्य का आनन्द लेने के लिए अवकाश होता है और न ही अभिरुचि के अनुसार व्यवहार करने का। उसका स्वयं से भी इसलिए अलगाव हो जाता है क्योंकि उसे जीवित रहने के लिए और जीवन की मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए कठोर मेहनत करनी पड़ती है। इस प्रकार अपनी पांडुकृतियों में पूँजीवादी व्यवस्था में अलगाव को दर्शाना मार्क्स का एकमात्र उद्देश्य नहीं है। उसका उद्देश्य क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए रास्ता तैयार करना है जिसमें व्यक्ति का स्वयं से अलगाव खत्म हो, निजी सम्पत्ति का सकारात्मक रूप से उन्मूलन हो और एक वर्ग विहिन समाज अर्थात साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना हो (मार्क्स: 1844: तीसरा अंक)।

इस प्रकार मार्क्सवादी चिंतन परंपरा में अलगाव की संकल्पना के सूत्रपात ने मार्क्सवादी विश्लेषण में नई-नई प्रवृत्तियों की शुरुआत की है। वस्तुतः परम्परागत मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार सामाजिक जीवन की दो स्तरों पर पहचान की जाती है: (1) आधार (Base): समाज की उत्पादन प्रणाली (2) अधिरचना (Superstructure): समाज का कानूनी और राजनीतिक ढाँचा, धर्म, नैतिकता, सामाजिक प्रथाएँ इत्यादि। परम्परागत मार्क्सवादियों की मान्यता है कि जब आधार में कोई मूल परिवर्तन होता है तो उसके अनुरूप अधिरचना में भी अपने आप बदलाव हो जाते हैं।

इस प्रकार परम्परागत मार्क्सवादियों के विश्लेषण का केंद्रीय बिंदु समाज का आर्थिक और प्रौद्योगिक आधार रहा और उसमें अधिरचना के विश्लेषण पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। इसी कारण मार्क्सवादी चिंतन परम्परा में समाज की राजनीति, कानून, धर्म एवं नैतिकता, कला और साहित्य इत्यादि पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता था। जब अलगाव का सिद्धांत मार्क्सवादी परम्परा का महत्वपूर्ण अंग बन गया तो मनुष्य और उसकी संस्कृति के विश्लेषण पर व्यापक अध्ययन की शुरुआत हुई।

स्वाधीनता की संकल्पना (Concept of Freedom)

मार्क्सवादी स्वतंत्रता की अवधारणा कार्ल मार्क्स के अलगाव के सिद्धांत से निकटता से जुड़ी है। मार्क्स मनुष्य की अलगाव की स्थिति को समाप्त करके उसे स्वाधीनता प्रदान करना चाहता है और इसके लिए मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करके समाजवादी व्यवस्था स्थापित करना जरूरी है। सारतत्व के रूप में मार्क्स का लक्ष्य प्रभुत्व (Dominance) एवं आधीनता (Subjection) की उन परिस्थितियों को समाप्त करना है जो सभ्यता के प्रारम्भ से ही मानव जीवन को अपने जाल में जकड़े हुए हैं। मार्क्सवादी स्वतंत्रता का अर्थ मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि मात्र नहीं है यद्यपि यह संतुष्टि उसकी आवश्यकता शर्त है। फिर भी स्वतंत्रता के लिए उन परिस्थितियों का निदान भी आवश्यक है जो मनुष्य को ऐसा अमानवीय जीवन जीने को विवश कर देती है जो उसे अपने सहचरों से और यहाँ तक की अपने आप से बेगाना बना देती है। अतः अलगाव की स्थिति को समाप्त करना मनुष्य की स्वतंत्रता की आवश्यकता शर्त है। मार्क्सवादी स्वतंत्रता की अवधारणा को ‘स्वतंत्रता एवं विवशता’ तथा ‘स्वतंत्रता एवं आत्मप्रेरित व्यवहार’ में सम्बन्ध के संदर्भ में समझना आवश्यक है। मार्क्सवाद की मान्यता है कि स्वतंत्रता विवशता (Necessity) को मान्यता देकर ही प्राप्त की जा सकती है। (Freedom is the recognition of necessity) वस्तुतः यह हीगेलवादी अवधारणा है। एंगेल्स ने इसे हीगेल से लिया। विवशता (Necessity) का अर्थ है- प्रकृति और समाज के विकास के वास्तविक नियम जो मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र होते हैं। यह ब्रह्माण्ड कुछ वास्तविक नियमों (Objective laws) से चल रहा है और ये नियम बदले नहीं जा सकते क्योंकि ये नियम निश्चित है। ये प्राकृतिक नियम हमारी इच्छा से स्वतंत्र है। मनुष्य केवल इन नियमों का वैज्ञापिक ज्ञान प्राप्त करके निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इनका उपयोग कर सकता है। अतः मार्क्सवादी स्वतंत्रता का तात्पर्य यही है कि मनुष्य ब्रह्माण्ड के जिन नियमों के सामने विवश हे, उनकी वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करके उन्हें अपने निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बना सकता है। उदाहरण के लिए गुरुत्वाकर्षण का नियम कहता है कि पृथ्वी में चुम्बकीय शक्ति है और यदि कोई भी चीज फेंकी जाए तो वह जमीन की ओर गिरेगी। यह एक वास्तविक नियम है। हम चाहे अथवा न चाहे इसे बदला नहीं जासकता। एंगेल्स ने अपनी कृति एंटी-ड्यूरिंग (Anti-Duhring 1878) में लिखा है कि स्वाधीनता (Freedom) प्राकृतिक नियमों से स्वतंत्रता के स्वप्न में निहित नहीं होती बल्कि इन नियमों की जानकारी प्राप्त करने तथा उस सम्भावना में निहित होता है जो निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति इन नियमों को व्यवस्थित ढंग से काम करने का इंगित करती है (एंगेल्सः 1878:21)।

ब्रह्माण्ड के वास्तविक नियमों अथवा विवशताओं के अतिरिक्त समाज के विकास के भी कुछ वास्तविक नियम (Objective laws of the development of society) हैं। उदाहरण के लिए, यदि समाज में निजी सम्पत्ति का बोलबाला होगा तो ऐसा समाज वर्गों में बँटा होगा। यदि समाज वर्गों में बँटा होगा तो वहाँ निश्चित रूप से शोषण होगा और शोषण पर आधारित समाज में स्वतंत्रता (Freedom) नहीं होगी। मार्क्सवादियों के अनुसार यह सामाजिक विकास का नियम है कि निजी सम्पत्ति के रहते हुए समाज शोषण से मुक्ति नहीं पा सकता। इस प्रकार ये सभी विवशताएँ अर्थात् समाज तथा ब्रह्माण्ड के वास्तविक नियम बदले नहीं जा सकते बल्कि इनको समझकर मनुष्य स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है। अतः मार्क्सवादी मान्यताओं के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्त करने की विवशता (Necessity) है- समाज और ब्रह्माण्ड के विकास के नियमों का वैज्ञानिक ज्ञान, उनके कारण तथा प्रभाव के सम्बन्धों को जानना। तभी समाज एवं प्रकृति पर नियंत्रण को सम्भव बनाया जा सकता है। वस्तुतः मनुष्य समाज और ब्रह्माण्ड के जिन नियमों का अनजाने में गुलाम बना रहता है, उन्हीं नियमों को वैज्ञानिक आधार पर समझकर उन पर अपना नियंत्रण कर सकता है और उनकी परतंत्रता से मुक्ति पाकर स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार विवशता (Necessity) कभी खत्म नहीं हो सकती किंतु इसके बावजूद मनुष्य स्वतंत्रता हासिल कर सकता है। दूसरे शब्दों में मनुष्य स्वयं को ब्रह्माण्ड एवं समाज की विवशताओं से मुक्त नहीं कर सकता। किंतु मनुष्य की स्वतंत्रता और विवशता (Necessity) एक-दूसरे की विरोधी नहीं है, बल्कि इसके विपरीत विवशता (Necessity) ही स्वतंत्रता की पहली शर्त है और इसे जन्म देती है (Comforth, M 237-38)। अतः मार्क्सवादियों की मान्यता है कि मनुष्य न तो स्वतंत्र पैदा होता

है और न ही स्वतंत्रता ब्रह्माण्ड की मनुष्य को दी गई भेंट है। स्वतंत्रता मनुष्य द्वारा संघर्ष से जीती जाती है। यह मनुष्य के सामाजिक ज्ञान और संघर्ष की उपज है।

इस प्रकार यद्यपि मार्क्सवाद ब्रह्माण्ड तथा समाज के वास्तविक नियमों की निश्चयवादी प्रकृति (Deterministic Nature) में विश्वास करता है, फिर भी वह मानवीय सामाजिक गतिविधियों को पर्याप्त महत्व देता है। इसी आधार पर एंगेल्स इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि पूँजीवादी समाज की मुख्य पहचान विवशता (Necessity) है, स्वतंत्रता नहीं इसमें पूँजीपतियों का ध्येय सामाजिक संतुष्टि को बढ़ाना नहीं बल्कि निजी लाभ को बढ़ाता है। उत्पादन सम्बन्धों नीतियाँ धनी एवं सम्पन्न उपभोक्ताओं की जरूरतों को ध्यान में रखकर तैयार की जाती है, जनसाधारण का जीवन स्वास्थ्य एवं संतुष्टि एजेंडे पर कहीं भी नहीं होती। मार्क्सवादियों की मान्यता है कि औद्योगिक प्रणाली को मानवीय संतुष्टि का साधन बनाने के लिए पूँजीवादी व्यवस्था की समाप्ति एवं समाजवाद की स्थापना आवश्यक है, जिसमें उत्पादन के साधनों, तरीकों और नीतियों पर जनसाधारण का नियंत्रण स्थापित हो जाएगा। साम्यवादी घोषणा पत्र (1848) में कार्ल मार्क्स ने उत्पादन प्रणाली में उस महान क्रांति का स्वागत किया है जो औद्योगिक तकनीकों का फल थी। वे मात्र पूँजीपतियों द्वारा मजदूरों के आर्थिक शोषण एवं मुनाफाखोरी के विरुद्ध थे।

आलोचनात्मक समीक्षा

मार्क्सवादी विचार परम्परा में इटली के अग्रणी विचारक ऐंटोनियो ग्राम्शी (Antonio Gramsci 1891-1937) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इटली में मुसोलिनी के शासनकाल (1922-43) के दौरान ग्राम्शी पर राज्य के विरुद्ध षडयंत्र का आरोप लगाकर उन्हें जेल में डाल दिया गया, जहाँ कुछ वर्ष बाद उनकी मृत्यु हो गई। ग्राम्शी ने जेल में रहते हुए राजनीति और दर्शन के अलावा समाज, भाषा विज्ञान और साहित्य-समालोचना जैसे अलग-अलग विषयों पर लेख लिखे। ये सब लेख (1929-35) ग्राम्शी की मृत्यु के बाद 1971 में 'प्रिजन नोटबुक्स' के नाम से प्रकाशित हुए। इन लेखों में ग्राम्शी ने परम्परागत मार्क्सवाद की अनेक मान्यताओं को अस्वीकार करते हुए पूँजीवादी राज्य का नया विश्लेषण पेश किया। ग्राम्शी ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और आर्थिक नियतिवाद पर कड़ा प्रहार किया।

कार्ल मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि क्रांति और समाजवाद का संक्रमण काल सबसे पहले उन्नत पूँजीवादी समाजों में आएगा। एंटोनियो ग्राम्शी ने दावा किया कि उन्नत पूँजीवादी समाजों में ऐसा नहीं होता। राज्य और राजनीति विज्ञान के बारे में ग्राम्शी लिखते हैं कि यदि राजनीति विज्ञान राज्य का विज्ञान है और राज्य उन व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक गतिविधियों का केन्द्र है जिनके द्वारा शासक वर्ग न केवल अपना प्रभुत्व बनाए रखता है तथा उसे न्याय संगत ठहराता है बल्कि शासितों की क्रियाशील सहमति भी प्राप्त कर लेता है, तो यह स्वाभाविक है कि समाजशास्त्र के सभी जरूरी सवाल राजनीतिकशास्त्र के सवालों के अलावा कुछ भी नहीं है (ग्राम्शीः 1971:144)। ग्राम्शी राज्य को शासक वर्गों का हथियार मानते हुए लिखते हैं कि शासक वर्गों की ऐतिहासिक एकता राज्य के रूप में साकार होती है और इनका इतिहास आवश्यक रूप से राज्यों का इतिहास और राज्यों का समूह है। परम्परागत मार्क्सवादी परम्परा से आगे बढ़कर ग्राम्शी राज्य को मात्र बल अथवा जोर जबरदस्ती करने वाला यंत्र नहीं मानते बल्कि उनकी मान्यता है कि यह प्राधान्य एवं प्रभुत्व (Domination) पर आधारित है। यहाँ प्राधान्य का तात्पर्य शासकवर्ग द्वारा अपने हितों से जुड़े मूल्यों और मान्यताओं से है जिसे राज्य शिक्षा तथा प्रचार के माध्यमों से सब लोगों के लिए उपयुक्त मूल्यों और मान्यताओं के रूप में स्थापित करके उनका समर्थन प्राप्त कर लेता है। जहाँ तक 'प्रभुत्व' का अर्थ है, ग्राम्शी ने विशेष रूप से पूँजीवादी समाज की संस्कृति में प्रभुत्व की संरचनाओं का पता लगाया है और पूँजीवादी समाज की अधिरचना के दो स्तरों में अंतर किया हैः (क) इनमें एक आधार के अधिक निकट है और वह परिवार, स्कूल, चर्च इतयादि के रूप में देखने को मिलता है और (ख) दूसरा राज्य की बल-प्रयोगमूलक संरचनाओं में परिलक्षित होता है। ग्राम्शी की मान्यता है कि परिवार, पाठशाला, धार्मिक संस्थाएँ, नागरिक समाज की संस्थाएँ आदि नागरिकों को शासक वर्ग के प्रति स्वाभाविक सम्मान दर्शाने की शिक्षा देती है और साथ ही पूँजीवादी समाज के नियमों को वैधता प्रदान करती है, जिससे पूँजीवादी व्यवस्था में निहित अन्याय भी न्याय के रूप में प्रतीत हो। ये संरचनाएँ वास्तव में पूँजीवादी व्यवस्था को इस तरह कार्य करने में सहायता देती हैं कि उसकी सत्ता को कोई चुनौती न दे पाए। सामान्यतः पूँजीवादी समाज अपनी स्थिरता के लिए नागरिक समाज की इन्हीं संरचनाओं की कार्यकुशलता पर आश्रित होता है। जब कभी नागरिक समाज असहमति पर नियंत्रण और उसका दमन करने में विफल हो जाता है, तभी राज्य को इसका दमन करने के लिए बल प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है (संधु, राजनीतिक सिद्धांत 346) इस प्रकार ग्राम्शी के अनुसार आधिपत्य एवं प्राधान्य के कारण

राज्य का उदय हुआ। मार्क्सवादी राज्य सम्बधी सिद्धांत में ग्राम्शी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि वे राज्य की उत्पत्ति में बल प्रयोग के साथ ही जनता की सक्रिय और निष्क्रिय सहमति को समान महत्व देते हैं।

समकालीन मार्क्सवाद के महत्वपूर्ण विचार सम्प्रदाय 'फ्रैंकफर्ट स्कूल' के पवर्तकों ने 'अलगाव'एवं 'सवतंत्रता' जैसे विषयों पर नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इस विचार सम्प्रदाय के मुख्य प्रवर्तकों में जर्मन मार्क्सवादी थियोडॉर एडोर्नो (1903-69), मैक्स हारवाइमर (1895-1973) हर्बर्ट मार्क्यूजे (1898-1979) एवं युर्गेन हेबरमास (1929) आदि हैं। यह विचार सम्प्रदाय आधिपत्य और विमुक्ति के द्वंद्वाद (Dialectics of Domination and Liberation) पर मार्क्सवाद का ध्यान केंद्रित करता है। मौटे तौर पर इन विचारकों ने पूँजीवादी व्यवस्था के दो स्तरों पर विश्लेषण किया हैः तकनीक तंत्रीय आधिपत्य और आर्थिक शोषण। फ्रैकफर्ट स्कूल के समर्थक इन दोनों तत्वों को आधुनिक समय में मनुष्य के अलगाव का कारण एवं उसकी स्वतंत्रता के लिए हानिकारक मानते हैं। वे मनुष्य की स्वतंत्रता के लिए केवल पूँजीवादी व्यवस्था का अन्त ही नहीं चाहते बल्कि वे तकनीकी तंत्र को भी श्रम प्रक्रिया के अमानवीयकरण (Dehumanization of Labour Process) का स्रोत मानकर उससे मुक्ति की माँग करते हैं (सन्धु, 348)। हर्बर्ट मार्क्यूजे समकालीन अमेरिकी नवमार्क्सवादी दार्शनिक के रूप में जाने जाते हैं। उनका चिंतन इन कृतियों में उपलब्ध होता है-

1. Soviet Marxism, 1958.
2. Reason and Revolution : Hegal and the Rise of Social Theory, 1941.
3. Eros and Civilization A Philosophical Inquiry into Freud, 1960.
4. One Dimensional Man, 1964.
5. A Critique of Pure Tolerance, 1965.

मार्क्यूजे ने हेगेल और मार्क्स ने दोनों के विचारों में द्वंद्वात्मक तत्वों को महत्ता दी है और आधुनिक प्रौद्योगिक समाज की कड़ी आलोचना करते हुए मार्क्स के अलगाव के सिद्धांत की विस्तार से व्याख्या दी है। उनका प्रमुख तर्क यहाँ से प्रारम्भ होता है कि औद्योगिक दृष्टि से उन्नतिशील समाज मनुष्य के विकास एवं उसके लिए सृजनात्मक स्वतंत्रता का कोई ठोस आधार प्रस्तुत नहीं करते, उल्टे मनुष्य के स्वतंत्र विकास की सम्भावनाओं को भी नष्ट कर देते हैं। मार्क्यूजे के अनुसार पूँजीवादी समाज में पूँजीपति वर्ग एवं मजदूर वर्ग दोनों की यथास्थिति बनाए रखने ने दिलचस्पी में होती है। साम्यवादी समाज भी किसी प्रकार के बदलाव के लिए तैयार नहीं होता है।

मार्क्यूजे ने प्रचार के आधुनिक साधनों का विश्लेषण किया है और यह उनका राजनीतिक चिंतन में विशेष योगदान है इसके आधार पर उन्होंने यह समझाने का प्रयास किया है कि आधुनिक औद्योगिक समाज किस प्रकार एक विशिष्ट विचारधारा का शिकार हो गया है? किस प्रकार अनेक साधनों के द्वारा सभी व्यक्तियों के पास एक ही तरह के विचार पहुँचते हैं। चूँकि इन्हीं विचारों को बार-बार दोहराया जाता है, इसलिए व्यक्ति इन्हें प्रमाणित सत्य के रूप में स्वीकार कर लेता हे। प्रचार के इन परिष्कृत और व्यवस्थित साधनों ने सर्वहारा वर्ग को जीर्ण-शीर्ण, संगठनहीन और समाज पर सभी दृष्टियों से इतना अधिक निर्भर कर दिया है कि आज वह पूँजीवादी समाज का वह मुकाबला करने की स्थिति में नहीं है जिसकी अपेक्षा कार्ल मार्क्स ने उससे की थी। मार्क्यूजे की मान्यता है कि आज के औद्योगिक समाज में एक नए किस्म की गुलामी आ गई है जो न तो आज्ञाकारिता पर आधारित है और नही कठिन परिश्रम पर, बल्कि गुलामी का सबसे शुद्ध रूप यही है जिसमें मनुष्य एक साधन अथवा वस्तु मात्र बनकर रह जाता हैं मार्क्यूजे रूस में व्यवहार में लाए जा रहे मार्क्सवाद का कटु विरोधी था। उसका मानना था कि उसके द्वारा "अभाव की स्थिति बनाए रखकर और बाहरी खतरों का डर बताकर एक 'दमनकारी आत्मनिग्रही नैतिकता' को लोगों पर जबरदस्ती लादा गया है। इस प्रकार मार्क्सवाद ने दमन के नए तरीकों का आविष्कार किया है। मार्क्यूजे के अनुसार इस विचारधारा की शुरुआत विचारधाराओं का अंत करने के प्रयत्न के रूप में हुई थी किंतु रूस में मार्क्सवाद स्वयं में एक विचारधारा बन गया (एस. वैद्यनाथन अय्यरः दि टाइम्स ऑफ इण्डिया' 30 जुलाई 1972 के मार्क्यूजे सम्बन्धी उसके लेख से उद्धृत)।

मार्क्यूजे की दृष्टि में पूँजीवाद और मार्क्सवाद दोनों ही समान रूप से मानव व्यक्तित्व के दुश्मन है। दोनों ही व्यवस्थाओं में व्यक्ति आनंद की खोज में पराजय और कुण्ठा का अनुभव करता है। यहाँ मार्क्यूजे के चिन्तन की एक विशेषता उभरकर आती है जिसमें वे इन सारे हालातों के लिए न तो व्यक्तियों को दोषी ठहराते हैं और न व्यवस्थाओं को, चाहे वे पूँजीवादी हो अथवा समाजवादी उनकी दृष्टि में सारा दोष चेतना के उन विभिन्न स्वरूपों का है जिन्होंने आधुनिक मनुष्य को अपनी मुट्ठी में जकड़ लिया है (एस. वैद्यनाथन) इस सन्दर्भ में मार्क्यूजे द्वारा प्रतिपादित 'एम आयानी व्यक्ति' (One-dimensional Man) के सिद्धांत पर चर्चा करना आवश्यक होगा जिसके कारण आज व्यक्ति का दृष्टिकोण एकांगी बन गया है। अपनी कृति 'One Dimensional Man : Studies in the Ideologies of Advanced Industrial Society (1968)' में हर्बर्ट मार्क्यूजे का तर्क है कि मजदूर वर्ग सामान्यतः पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा विलीन हो चुका है और इसके लिए अब कोई चुनौती नहीं दिखाई देती। यह 'एक आयामी समाज' रह गया है जिसके लिए बहुसंख्यक सामान्यतः कोई विकल्प नहीं सोचते। पूँजीवाद ने जनसंचार के साधनों का चतुरता से इस्तेमाल करते हुए पीड़ित वर्ग के असंतोष का संवेदनशून्य बना दिया है क्योंकि यह तुच्छ भौतिक इच्छाओं को उत्तेजित करता है जिनको संतुष्ट करना राज्य के लिए बहुत सरल काम है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति का बहुआयामी व्यक्तित्व लुप्त होता जा रहा है और उसकी तुच्छ भौतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है। इस प्रकार मनुष्य के व्यक्तित्व पर एक उपभोक्ता संस्कृति (Consumer Culture) हावी हो गई है जिसने उसकी 'सृजनात्मक स्वतंत्रता' के विचार को काफी पीछे धकेलकर उसे 'एक आयामी व्यक्ति' बना दिया है। इसी प्रकार युर्गेन हेबरमास ने अपनी कृति 'Legitimation Crisis' (1975) एवं अन्य कृतियों के अंतर्गत मनुष्य की स्वतंत्रता की समस्या को पूँजीवाद की वैधता के संकट के रूप में देखते हैं। हैबरमास की मान्यता है कि समकालीन दुनिया में विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं संगठन की तीव्र प्रगति के कारण मनुष्य की तर्कबुद्धि उसे अपने जीवन का साध्य नहीं सुझाती बल्कि सिर्फ साधनों को इकट्ठा करना सिखाती है। इस प्रकार वह उसे स्वतंत्रता का रास्ता नहीं दिखाती बल्कि वह अपना प्रभुत्व स्थापित करके उसे अपना गुलाम बना देती है। इस प्रकार फ्रैंकफर्ट स्कूल के प्रमुख विचारकों ने बदलती हुई सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में अलगाव जैसी महत्वपूर्ण अवधारणा को नई दिशा प्रदान की है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

1. डग लॉरिमर (2006) ऐतिहासिक भौतिकवाद के मूल सिद्धांत, ग्रन्थ शिल्पी (इंडिया) दिल्ल
2. स्टुअर्ट आर. स्क्रैम, (1969), द पोलिटिकल थोट ऑफ माओत्से तुंग, पेंग्विन बुक्स.
3. ज्ञान सिंह संधु, (1985), राजनीतिक सिद्धांत हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-34.
4. जार्ज एच. सेबाइन, (1982), (अनुवादित), राजनीतिक दर्शन का इतिहास, विश्व प्रकाश गुप्त, दिल्ली.
5. मलफर्ड, क्यू. सिबली, (1990), राजनीतिक विचार और विचारधाराएँ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.
6. लेनिन, वी.आई. (1964-70), कलेक्टेड वर्क्स, खंड-19, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को.
7. Shimp, Kaleb, (2009) The Validity of Karl Marx's Theory of Historical Materialism, Major Themes in Economic Spring, pp. 35-56.
8. Wolf, Jonathan, (2003), Why Read Marx Today? Oxford University Press, New York.
9. Mao Tse-Tung. (1952), On Contradiction, Foreign Languages Press.
10. Lancaster, L. (1959), Masters of Political Thought, Vol. 3, Harper London. Karl.
11. Karl Marx, (1844), Economic and Philosophic Manuscripts of 1844, Progress Publishers, Moscow, (1959).
12. F. Engles, (1878), Anti Duhring, Piking.
13. M. Cornforth, (1955), The Dialectical Materialism, Vol.3, N.B.A., Calcutta.
14. Antonio, Gramsci (1971), Prison Notebooks, International Publishers, New York.

अन्य पठनीय सामग्री

1. के. मार्क्स एवं एफ. ऐंगेल्स (1969-70), सेलेक्टेड वर्क्स, (तीन खण्डों में) प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को.
2. डग लॉरिमर, (2006) ऐतिहासिक भौतिकवाद के मूल सिद्धांत, ग्रन्थ शिल्पी (इंडिया) दिल्ली.
3. Marx and Engels, (2008), The Poverty of Philosophy, Progress Publishers, Mascow.
4. Karl Marx, (1973), The Poverty of Philosophy, Progress Publishers, Mascow.
5. Ralph Miliband, (1977), Marxism and Politics, Oxford University Press, Oxford.
6. Michael Evans, (1975), A Contribution to the Critique of Political Economy (English Edition), Allen and Unwin, London.
7. माओत्से तुग (1964) ऑन खुश्चेव फोनी कम्युनिस्म एंड इट्स हिस्टोरिकल लेसन्स फॉर द वर्ल्ड, फोरन लैंग्वेज, पीकिग.
8. Mao Tse Tung, (1963), Selected Military Writings of Mao Tse-Tung, Foreign Language Press, Peking.
9. Tom Bottomore, (1991), (ed.) A Dictionary of Marxist Thought, Worldview Publication.
10. राल्फ मिलिबैंड (1981) (अनुवादित), पूँजीवादी समाज में राजसता, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली

**** Corresponding Author***

बलवान गौतम

प्रोफेसर आम्बेडकर पीठ

हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

** डॉ रेखा कौशिक

सहायक प्रोफेसर

श्याम लाल कॉलेज, *दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

Email id - bs.20aug@gmail.com, Mob.– 9971327848